हिन्दुओं के सोलह संस्कार-एक विश्लेषण

कैलाश चतुर्वेदी
चिड़ावा, राज.

सनातन अथवा हिन्दू धर्म की संस्कृति संस्कारों पर ही आधारित है। हमारे ऋषि मुनियों ने मानव जीवन को पवित्र एवं मर्यादित बनाने के लिये संस्कारों का आविष्कार किया। धार्मिक ही नहीं वैज्ञानिक दृष्टि से भी इन संस्कारों का हमारे जीवन में विशेष महत्व है। भारतीय संस्कृति की महानता में इन संस्कारों का महत्वपूर्ण योगदान है।

प्राचीनकाल से यह प्रथा प्रचलित थी कि सभी व्यक्ति अपनी अपनी कुल मर्यादा के अनुसार वेद, संहिता, परम्परा एवं गृह्य सूत्र का आधार लेते हुए ही संस्कार किया करते थे। तथा उनके लिखित वचनों का सर्वथा पूर्णतया पालन भी करते थे।

संस्कार का अर्थ

संस्कार शब्द की व्युत्पत्ति 'सम्' पूर्वक ''कृञ'' धातु से 'घञ' प्रत्यय से हुई है। (सम्+कृ+घञ् = संस्कार) और इसका प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है। विभिन्न विद्वानों के मतानुसार इसका अर्थ निम्नानुसार वर्णित किया जा सकता है। -

''हिन्दू संस्कार'' ग्रन्थ के प्रणेता डा. राजवली पाण्डेय ने अपने ग्रन्थ में इसका विवरण निम्नानुसार किया है-

मीमांसक - यज्ञाङगभूत पुरोडाश आदि की विधिवत शुद्धि से इसका आशय समझते हैं। **प्रोक्षणादिजन्य संस्कारो यज्ञाङ्गपुरोडाशेष्विति द्रव्यधर्मः।** (वाचस्पत्य-वृहदभिधान-5)

अद्वैत वेदान्ती जीव पर शारीरि क्रियाओं के मिथ्यारोप को संस्कार मानते हैं।

(स्नानाचमनादिजन्याः संस्कारा देहे उत्पद्यमानानि तदभिधानानि जीवे कल्प्यन्ते।)

नैयायिक भावों व्यक्त करने की आत्म-व्यञ्जक शक्ति को संस्कार समझते हैं, जिसका परिगणन वैशेषिक दर्शन में चौबीस गुणों के अन्तर्गत किया जाता है।

संस्कृत साहित्य में इसका प्रयोग शिक्षा, संस्कृति, प्रशिक्षण, सौजन्य, पूर्णता, व्याकरण सम्बन्धी शुद्धि, संस्करण, परिष्करण, शोभा, आभूषण, प्रभाव स्वरूप, स्वभाव क्रिया, छाप, स्मरण शक्ति, स्मरण शक्ति पर पड़ने

वाला प्रभाव, शुद्धि क्रिया, धार्मिक विधि-विधान, अभिषेक, विचार, भावना, धारणा, कार्य का परिणाम तथा क्रिया की विशेषता आदि अर्थों में हुआ है।

इनके उदाहरण रघुवंश महाकाव्य, कुमार सम्भव महाकाव्य, शाकुन्तलम्, हितोपदेश, तर्क संग्रह, याज्ञवल्क्य-स्मृति एवं मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में मिलते हैं।

मीमांसक इस शब्द व्यवहार वैयक्तिक शुद्धि के लिए किय जाने वाले अनुष्ठानों के लिए न कर अग्नि में आहुति देने के पूर्व यज्ञीय सामग्री के परिष्कार के लिए करते हैं।

(व्रीह्यादेश्च यज्ञाङ्गता प्रदानाय वैदिक मार्गेण प्रोक्षणादिः।) (वाचस्पत्य वृहदभिधान भाग-5)

सरांशत

यह स्पष्ट है कि ''संस्कार'' शब्द के साथ विलक्षण अर्थों का योग हो गया है, जो इसके दीर्घ इतिहास क्रम में इसके साथ संयुक्त हो गए हैं। इसका अभिप्राय शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के दैहिक, मानसिक एवं बौद्धिक परिष्कार के लिए जाने वाले अनुष्ठानों में से है, जिनसे वह समाज का पूर्ण विकसित सदस्य हो सके। किन्तु हिन्दू संस्कारों में अनेक आरम्भिक विचार, धार्मिक विधि-विधान, उनके सहवर्ती नियम तथा अनुष्ठान भी समाविष्ट हैं, जिनका उद्देश्य केवल औपचारिक दैहिक संस्कार ही न होकर संस्कार्य व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिष्कार, शुद्धि और पूर्णता भी है।

संस्कारों की संख्या – विभिन्न गृह्यसूत्रों, धर्मसूत्रों और स्मृति ग्रन्थों में संस्कारों की संख्या का उल्लेख पृथक्-पृथक् किया गया है।

गृह्यसूत्र – आश्वलायन गृह्यसूत्र में विवाहादि ग्यारह, पारस्कर गृह्यसूत्र, बौधायन गृह्यसूत्र, तथा वाराह गृह्यसूत्र में तेरह तथा वैखानम गृह्यसूत्र में अठ्ठारह संस्कारों का उल्लेख मिलता है।

धर्मसूत्र – गौतम धर्मसूत्र में आठ आत्म गुणों के साथ ही चालीस संस्कारों को प्रतिपादित किया गया है।

स्मृति ग्रन्थ – मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति में तेरह संस्कारों का उल्लेख है।

याज्ञवल्क्य स्मृति केशान्त को छोड़कर उन्हीं संस्कारों का परिगणन करती है। **गौतम स्मृति** में अपने चरण के अनुसार चालीस संस्कारों का उल्लेख है। **अंगिरा स्मृति** में पच्चीस संस्कार तो **व्यास स्मृति** व **परवर्ती स्मृति** ग्रंथों में सोलह संस्कार बताये गये हैं। जातुकर्ण भी सोलह संस्कारों को ही मान्यता देते हैं तथा व्यास द्वारा परिगणित अन्तिम

दो संस्कारों को हटाकर ''अन्त्येष्टि'' को रखते हैं।

''स्वामी दयानन्द सरस्वती '' की संस्कार-विधि पण्डित ''भीमसेन शर्मा'' की षोडश संस्कार-विधि एवं ''पं. गोपाल दत्त शास्त्री'' की ''संस्कार-पद्धतिः'' में केवल सोलह संस्कारों का ही समावेश है।

सोलह संस्कार

विभिन्न धर्म ग्रंथों में संस्कारों के क्रम में थोड़ा बहुत अन्तर है, तो प्रचलित संस्कारों के क्रम में निम्नांकित सोलह संस्कार बहु प्रचलित एवं बहुमान्य है-

1. गर्भाधान, 2. पुंसवन, 3. सीमन्तोन्नयन, 4. जातकर्म, 5. नामकरण, 6. निष्क्रमण, 7. अन्नप्राशन, 8. चूडाकर्म (चूडा करण), 9. विद्यारम्भ, 10. कर्णवेध, 11. यज्ञोपवीत, 12. वेदारम्भ, 13. केशान्त, 14. समावर्तन, 15. विवाह और 16. अन्त्येष्टि

प्रथमः गर्भधारञ्च, पुंसवनं द्वितीयं तथा।
तृतीयञ्चैवसीमन्तं, संस्कारमिति उच्यते।।1।।

चतुर्थ जातकर्मञ्च, नामञ् पञ्चमं तथा।
ज्ञेयं निष्क्रमणं षष्ठं, अन्नप्राशञ्च सप्तमम्।।2।।

चूड़ाकर्मं हि अष्टञ्च, विद्यारभ्मं तथा परम्।
दशमं कर्णवेधञ्च, निगदति विचक्षणाः।।3।।

यज्ञोपवीति विज्ञेयः, एकादशञ्च उत्तमम्।
वेदारम्भञ्च जानीयात्, केशान्तञ्च ततः परम।।4।।

चतुर्दशं हि संस्कारं, समावर्तञ्च कथ्यते।
पञ्चदशं विवाहञ्च, अन्त्येष्टीति षोडशम्।।5।।

इन सोलह संस्कारों को चार भागों में विभक्त किया गया है-

क. प्राग्-जन्म-संस्कार

ख. बाल्यावस्था के संस्कार

ग. शैक्षणिक संस्कार

घ. विवाहादि संस्कार

क. प्राग्-जन्म-संस्कार (जन्म से पूर्व के संस्कार)

गर्भाधान संस्कार – हमारे शास्त्रों में मान्य सोलह संस्कारों में गर्भाधान पहला है। गृहस्थ जीवन में प्रवेश के उपरान्त प्रथम कर्त्तव्य के रूप में इस संस्कार को मान्यता दी गई है। गार्हस्थ्य जीवन का प्रमुख उद्देश्य श्रेष्ठ सन्तानोत्पत्ति है। उत्तम संतति की इच्छा रखने वाले माता-पिता को गर्भाधान से पूर्व अपने तन और मन की पवित्रता के लिए यह संस्कार करना चाहिए। विशेष तिथि एवं ग्रहों की गणना के आधार पर ही गर्भाधान करना उचित माना गया है। वैदिक काल में यह संस्कार अति महत्वपूर्ण समझा जाता था।

पुंसवन संस्कार – गर्भस्थ शिशु के मानसिक विकास की दृष्टि से यह संस्कार उपयोगी समझा जाता है। गर्भाधान के दूसरे या तीसरे महीने में इस संस्कार को करने का विधान है। हमारे मनीषियों ने सन्तानोत्कर्ष के उद्देश्य से किये जाने वाले इस संस्कार का प्रयोजन स्वस्थ एवं उत्तम संतति को जन्म देना है।

सीमन्तोन्नयन संस्कार – सीमन्तोन्नयन को सीमन्तकरण अथवा सीमन्त संस्कार भी कहते हैं। सीमन्तोन्नयन का अभिप्राय है सौभाग्य संपन्न होना। गर्भपात रोकने के साथ-साथ गर्भस्थ शिशु एवं उसकी माता की रक्षा करना भी इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य है। इस संस्कार के माध्यम से गर्भिणी स्त्री का मन प्रसन्न रखने के लिए सौभाग्यवती स्त्रियां गर्भवती की मांग भरती है। यह संस्कार गर्भ धारण के छठे अथवा आठवें महिने में होता है।

ख. बाल्यावस्था के संस्कार

नामकरण संस्कार - जन्म के ग्यारवें दिन अथवा कुलपरम्परानुसार यह संस्कार होता है। हमारे धर्माचार्यों ने जन्म दस दिन तक अशोच (सूतक) माना है। (शेखावाटी में जननाशोच को सावड़ व मरणाशोच को सूतक के रूप में जाना जाता है।) इसलिए यह संस्कार ग्यारवें दिन करने का विधान है। महर्षि याज्ञवल्क्य का भी यही मत है, लेकिन अनेक कर्मकाण्डी विद्वान इस संस्कार को शुभ नक्षत्र अथवा शुभ दिन में करना उचित मानते हैं। नामकरण

संस्कार का सनातन धर्म में अधिक महत्त्व है। हमारे मनीषियों ने नाम का प्रभाव इसलिए भी अधिक बताया है क्योंकि यह व्यक्तित्व के विकास में सहायक होता है। तभी तो यह कहा गया है कि राम से बड़ा राम का नाम। हमारे धर्म मनीषियों ने बहुत शोध कर नामकरण संस्कार का आविष्कार किया। ज्योतिष विज्ञान तो नाम के आधार पर ही भविष्य की रूपरेखा तैयार करता है।

निष्क्रमण संस्कार – दैवीय जगत से शिशु की प्रगाढता बढ तथा ब्रह्माजी की सृष्टि से वह अच्छी तरह परिचित होकर दीर्घकाल तक धर्म और मर्यादा की रक्षा करते हुए इस लोक का भोग करे यही इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य है। निष्क्रमण का अभिप्राय है बाहर निकलना। इस संस्कार में शिशु को सूर्य तथा चन्द्रमा की ज्योति दिखाने का विधान है। भगवान् भास्कर के तेज तथा चन्द्रमा की शीतलता से शिशु को अवगत कराना ही इसका उद्देश्य है। इसके पीछे मनीषियों की शिशु को तेजस्वी तथा विनम्र बनाने की परिकल्पना की होगी। उस दिन देवी-देवताओं के दर्शन तथा उनसे शिशु के दीर्घ एवं याशस्वी जीवने के लिये आशीर्वाद ग्रहण किया जाता है। जन्म के चौथे महीने में इस संस्कार को करने का विधान है। तीन माह तक शिशु का शरीर बाहरी वातावरण यथा तेज धूप, तेज हवा आदि के अनुकूल नहीं होता है इसलिए प्रायः तीन मास तक उसे बहुत सावधानी से घर में रखना चाहिए। इसके बाद धीरे-धीरे उसे बाहरी वातावरण के संपर्क में आने देना चाहिए। इस संस्कार का तात्पर्य यही है कि शिशु समाज के सम्पर्क में आकर सामाजिक परिस्थितियों से अवगत हो।

अन्नप्राशन संस्कार – इस संस्कार का उद्देश्य शिशु के शारीरिक व मानसिक विकास पर ध्यान केन्द्रित करना है। अन्नप्रशान का स्पष्ट अर्थ है कि शिशु जो अब तक पेय पदार्थों, विशेषकर दूध पर आधारित था अब अन्न जिसे शास्त्रों में प्राण कहा गया है उसको ग्रहण कर शारीरिक व मानसिक रूप से अपने को बलवान व प्रबुद्ध बनाए। तन और मन को सुदृढ़ बनाने में अन्न का सर्वाधिक योगदान है। शुद्ध सात्विक एवं पौष्टिकआहार से ही तन स्वस्थ रहता है और स्वस्थ तन में ही स्वस्थ मन का निवास होता है। आहार शुद्ध होने पर ही अन्तःकरण शुद्ध होता है तथा मन, बुद्धि, आत्मा सबका पोषण होता है। इसलिए इस संस्कार का हमारे जीवन में विशेष महत्व है। हमारे धर्माचार्यों ने अन्नप्राशान के लिये जन्म से छठे महीने को उपयुक्त माना है। छठे मास में शुभ नक्षत्र एवं शुभ दिन देखकर यह संस्कार करना चाहिए। खीर को अमृत के समान उत्तम माना गया है।

चूड़ाकर्म संस्कार – चूड़ाकर्म को मुंडन संस्कार भी कहा जाता है। हमारे आचार्यो ने बालक के पहले, तीसरे या पाँचवें वर्ष में इस संस्कार को करने का विधान बताया है। इस संस्कार के पीछे शुचिता और बौधिक विकास की परिकल्पना हमारे मनीषियों के मन में रही होगी। मुंडन संस्कार का अभिप्राय है कि जन्म के समय उत्पन्न अपवित्र

बालों को हटाकर बालक को प्रखर बनाना है। नौ माह तक गर्भ में रहने के कारण कई दूषित कीटाणु उसके बालों में रहते हैं। मुंडन संस्कार से इन दोषों का सफाया होता है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार इस संस्कार को शुभ मुहूर्त में करने का विधान है। वैदिक मंत्रोच्चारण के साथ यह संस्कार सम्पन्न होता है।

ग. शैक्षणिक संस्कार

विद्यारम्भ संस्कार – विद्यारम्भ संस्कार के क्रम के बारे में हमारे आचार्यों में मत भिन्नता है। कुछ आचार्यों का मत है कि अन्नप्रासन के बाद विद्यारम्भ संस्कार होना चाहिए तो कुछ चूड़ाकर्म के बाद इस संस्कार को उपयुक्त मानते हैं। मेरी राय में अन्नप्रासन के समय शिशु बोलना भी शुरू नहीं कर पाता है और चूड़ाकर्म तक बच्चों में सीखने की प्रवृत्ति जगने लगती है। इसलिए चूड़ाकर्म के बाद ही विद्यारम्भ संस्कार उपयुक्त लगता है। विद्यारम्भ का अभिप्राय बालक को शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर से परिचित कराना है। प्राचीन काल में जब गुरूकुल की परम्परा थी तो बालक को वेदाध्ययन के लिए भेजने से पहले घर में अक्षर बोध कराया जाता था। माँ-बाप तथा गुरूजन पहले उसे मौखिक रूप से श्लोक, पौराणिक कथायें आदि का अभ्यास करा दिया करते थे ताकि गुरूकुल में कठिनाई न हो। हमारा शास्त्र विद्यानुरागी है। शास्त्र की उक्ति है ''सा विद्या या विमुक्तये अर्थात् विद्या वही है जो मुक्ति दिला सके। विद्या अथवा ज्ञान ही मनुष्य की आत्मिक उन्नति का साधन है। शुभ मुहूर्त में ही विद्यारम्भ संस्कार करना चाहिए।

कर्णवेध संस्कार – हमारे मनीषियों ने सभी संस्कारों को वैज्ञानिक कसौटी पर कसने के बाद ही प्रारम्भ किया है। कर्णवेध संस्कार का आधार बिल्कुल वैज्ञानिक है। बालक की शारीरिक व्याधि से रक्षा ही इस संस्कार का मूल उद्देश्य है। प्रकृति प्रदत्त इस शरीर के सारे अंग महत्वपूर्ण हैं। कान हमारे श्रवण द्वारा है। कर्णवेधन से व्याधियाँ दूर होती हैं तथा श्रवण शक्ति भी बढ़ती है। इसके साथ ही कानों में आभूषण हमारे सौन्दर्य बोध का परिचायक भी है।

यज्ञोपवीत संस्कार – यज्ञोपवीत अथवा उपनयन बौद्धिक विकास के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार है। धार्मिक और आध्यात्मिक उन्नति का इस संस्कार में पूर्णरूपेण समावेश है। हमारे मनीषियों ने इस संस्कार के माध्यम से वेदमाता गायत्री को आत्मसात करने का प्रावधान दिया है। आधुनिक युग में भी गायत्री मंत्र पर विशेष शोध हो चुका है। गायत्री सर्वाधिक शक्तिशाली मंत्र है।

''यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं'' अर्थात् यज्ञोपवीत जिसे जनेऊ भी कहा जाता है अत्यन्त पवित्र है। प्रजापति ने स्वाभाविक रूप से इसका निर्माण किया है तथा इसे ब्रह्मसूत्र भी कहते हैं। यह आयु को बढ़ानेवाला, बल और तेज प्रदान करने वाला है। इस संस्कार के बारे में हमारे धर्मशास्त्रों में विशेष उल्लेख है। यज्ञोपवीत धारण का वैज्ञानिक

महत्व भी है। प्राचीन काल में जब गुरूकुल की परम्परा थी उस समय प्रायः आठ वर्ष की उम्र में यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न हो जाता था। इसके बाद बालक विशेष अध्ययन के लये गुरूकुल जाता था। यज्ञोपवीत से बालक को ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी जाती थी जिसका पालन गृहस्थाश्रम में आने से पूर्व तक किया जाता था। इस संस्कार का उद्देश्य संयमित जीवन के साथ आत्मिक विकास में रत रहने के लिये बालक को प्रेरित करना है।

वेदारम्भ संस्कार – ज्ञानार्जन से सम्बन्धित है यह संस्कार। वेद का अर्थ होता है ज्ञान (विद्लृ ज्ञाने) और वेदारम्भ के माध्यम से बालक अब ज्ञान को अपने अन्दर समाविष्ट करना शुरू करे यही अभिप्राय है इस संस्कार का। शास्त्रों में ज्ञान से बढ़कर दूसरा कोई प्रकाश नहीं समझा गया है। स्पष्ट है कि प्राचीन काल में यह संस्कार मनुष्य के जीवन में विशेष महत्व रखता था। यज्ञोपीत के बाद बालकों को वेदों का अध्ययन एवं विशिष्ट ज्ञान से परिचित होने के लिए योग्य आचार्यों के पास गुरूकुल में भेजा जाता था। वेदारम्भ से पहले आचार्य अपने शिष्यों को ब्रह्मचर्य ब्रत का पालन करने एवं संयमित जीवन जीने का प्रतिज्ञा करवाते थे तथा उसकी परीक्षा लेने केबाद ही वेदाध्ययन कराते थे। असंयमित जीवन जीने वाले वेदाध्ययन के अधिकारी नहीं माने जाते थे। हमारे चारो वेद ज्ञान के अक्षुण्ण भंडार है।

केशान्त संस्कार – गुरूकुल में वेदाध्ययन पूर्ण कर लेने पर आचार्य के समक्ष यह संस्कार सम्पन्न किया जाता था। वस्तुतः यह संस्कार गुरूकुल से विदाई लेने तथा गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने को पूर्व उपक्रम है। वेद-पुराणों एवं विभिन्न विषयों में पारंगत होने के बाद ब्रह्मचारी के समावर्तन संस्कार के पूर्व बालों की सफाई की जाती थी तथा उसे स्नान कराकर स्नातक की उपाधि दी जाती थी। केशान्त संस्कार शुभ मुहूर्त में किया जाता था।

समावर्तन संस्कार – गुरूकुल से विदाई लेने से पूर्व शिष्य का समावर्तन संस्कार होता था। इस संस्कार से पूर्व ब्रह्मचारी का केशान्त संस्कार होता था और फिर उसे स्नान कराया जाता था। यह स्नान समावर्तन संस्कार के तहत होता था। इसमें सुगन्धित पदार्थों एवं औषधादि युक्त जल से भरे हुए वेदी के उत्तर भाग में आठ घड़ों के जल से स्नान करने का विधान है। यह स्नान विशेष मन्त्रोच्चारण के साथ होता था। इसे ब्रह्मचारी मेखला व दण्ड को छोड़ देता था। जिसे यज्ञोपवीत के समय धारण कराया जाता था। इस संस्कार के बाद उसे विद्या स्नातक की उपाधि आचार्य देते थे। इस उपाधि से वह सगर्व गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अधिकारी समझा जाता था। सुन्दर वस्त्र व आभूषण धारण करता था तथा आचार्यों एवं गुरूजनों से आशीर्वाद ग्रहण कर अपने घर के लिए विदा होता था।

घ. विवाहादि संस्कार

विवाह संस्कार – प्राचीन काल से ही स्त्री और पुरूष दोनो के लिए यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यज्ञोपवीत से

समावर्तन संस्कार है। यज्ञोपवीत से समावर्तन संस्कार तक ब्रह्मचर्य व्रत के पालन का हमारे शास्त्रों में विधान है। वेदाध्ययन के बाद जब युवक में सामाजिक परम्परा निर्वाह करने की क्षमता व परिपक्वता आ जाती थी तो उसे गृहस्थ धर्म में प्रवेश कराया जाता था। लगभग पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य - व्रत का पालन करने के बाद युवक परिणय सूत्र में बंधता था। हमारे शास्त्रों में आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख है-ब्रह्मा, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गन्धर्व, राक्षस एवं पैशाच। वैदिक काल में ये सभी प्रथाएं प्रचलित थी। समय के अनुसार इनका स्वरूप बदलता गया वैदिक काल से पूर्व जब हमारा समाज संगठित नहीं था तो उस समय उच्छृंखल यौनाचार था। हमारे मनीषियों ने इस उच्छृंखलता को समाप्त करने के लिए विवाह संस्कार की स्थापना करके समाज को संगठित एवं नियमबद्ध करने का प्रयास किया। आज उन्हीं के प्रयासों का परिणाम है कि हमारा समाज सभ्य और सुसंस्कृत है।

अन्त्येष्टि संस्कार – अन्त्येष्टि को अंतिम अथवा अग्नि परिग्रह संस्कार भी कहा जाता है। आत्मा में अग्नि का आधान करना ही अग्नि परिग्रह है। धर्म शास्त्रों की मान्यता है कि मृत शरीर की विधिवत् क्रिया करने से जीव की अतृप्त वासनायें शान्त हो जाती है। हमारे शास्त्रों में बहुत ही सहज ढंग से इहलोक और परलोक की परिकल्पना की गयी है। जब तक जीव शरीर धारण कर इहलोक में निवास करता है तो वह विभिन्न कर्मों से बंधा रहता है। प्राण छूटने पर वह इस लोक को छोड़ देता है। उसे बाद की परिकल्पना में विभिन्न लोकों के अलावा मोक्ष या निर्वाण है। मनुष्य अपने कर्मों केअनुसार फल भोगता है। इसी परिकल्पना के तहत मृत देह की विधिवत क्रिया होती है।

हमारे मनीषियों ने हमें सुसंस्कृत तथा सामाजिक बनाने के लिए अपने अथक प्रयासों और शोधों के बल पर ये संस्कार स्थापित किये हैं। इन्हीं संस्कारों के कारण भारतीय संस्कृति अद्वितीय है। हालांकि हाल के कुछ वर्षों में आपाधापी की जिंदगी और अतिव्यस्तता के कारण सनातन धर्मावलम्बी अब इन मूल्यों को भुलाने लगे हैं और इसके परिणाम भी चारित्रिक गिरावट, संवेदनहीनता, असामाजिकता और गुरूजनों की अवज्ञा या अनुशासनहीनता के रूप में हमारे सामने आने लगे हैं। समय के अनुसार बदलाव जरूरी है लेकिन हमारे मनीषियों द्वारा स्थापित मूलभूत सिद्धांतो को नकारना कभी श्रेयस्कर नहीं होगा।